International Journal of Multidisciplinary Research and Development
Online ISSN: 2349-4182, Print ISSN: 2349-5979, Impact Factor: RJIF 5.72
www.allsubjectjournal.com
Volume 4; Issue 3; March 2017; Page No. 267-269

प्राचीन भारत में प्रचलित शासन की पद्धतियाँ

डॉ. राज पाल
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष संस्कृत विभाग, सी. आर. किसान महाविद्यालय जींद।

प्रस्तावना

प्राचीन भारत में शासन–सम्बन्धी विभिन्न संविधान प्रचलित थे, जिनके द्वारा विभिन्न राज्यों का शासन कार्य सम्पादित किया जाता था। वर्तमान युग में विश्व के विभिन्न देशों में प्रचलित लोकतन्त्र, राजतन्त्र, अधिनायकतन्त्र, अल्पजनतन्त्र आदि सभी शासन–प्रणालियों की आधारशिला प्राचीन भारतीय वैदिक एवं स्मृतिग्रन्थों में है। ऋग्वेद में स्थान–स्थान पर राजतन्त्र से सम्बन्धित कितने ही पारिभाषिक शब्दों का उल्लेख है। राजा, राज्य आदि शब्द बार–बार उल्लिखित किये गये हैं। समाज में राजपद का इतना महत्त्व था कि देवताओं के सामर्थ्य, सत्ता व शक्ति को समझाने के लिए उनकी तुलना राजा से की है। वैदिक देवता राष्ट्रमय जीवन–यापन करते थे। देवताओं के वर्णनों से ही उनकी राजनैतिक तथा प्रशासनिक चेतना के दर्शन होते हैं।

पाश्चात्य विद्वान् अरस्तु (384–322 ई.) ने सरकार के स्वरूप पर गम्भीरतापूर्वक विचार करते हुए सरकार या शासक को छः वर्गों में विभाजित किया है :–

(1) जनतन्त्र, (2) राजतन्त्र, (3) तानाशाह या क्रूरतन्त्र, (4) कुलीनतन्त्र या शिष्टजन सत्तात्मक (5) अल्पजनसत्तात्मक (6) व्यवस्थित समाजतन्त्र। इसमें राजतन्त्र कुलीनतन्त्र एवं समाजतन्त्र ये तीनों ऐसी सरकारें हैं, जो प्रजा के हित को ध्यान में रखकर कार्य करती हैं, ये सरकारें मात्र उन्हीं लोगों के स्वार्थ को ध्यान में रखकर भी कार्य कर सकती हैं जो सत्ता या अधिकार में हों। उपर्युक्त तीनों शासन–पद्धतियों का विकृत रूप ही क्रमशः राजतन्त्र का तानाशाह, कुलीनतन्त्र का अल्पजनसत्तात्मक एवं व्यवस्थित समाजतन्त्र का गणतन्त्र स्वरूप हो जाता है। इसके अतिरिक्त यह वर्गीकरण राज्यशक्ति का प्रयोग करने वाले लोगों की संख्या के आधार पर एकतन्त्र, कुलीनतन्त्र एवं प्रजातन्त्र के रूप में तथा शक्ति के केन्द्रियकरण के आधार पर एकात्मक, संघात्मक तथा राज्यशक्ति का प्रयोग करने वाली संस्था के आधार पर संसदीय एवं अध्यक्षात्मक के रूप में किया गया है।

राजतन्त्र

राजतन्त्र का अर्थ उस शासन से है, जिसमें राज्य की सर्वोच्च सत्ता एक व्यक्ति के हाथ में रहती है। शासन के सभी अंग उसकी उदारता और स्वेच्छाचारी इच्छा के अधीन रहते हैं। उसके अधिकार असीमित होते हैं। राजा ही शासन का सर्वेसर्वा होता है। राजा की व्यक्तिगत इच्छा ही स्थायी रूप से प्रभावशाली रहती है। वैदिककाल में राजा की उत्पत्ति का दैवी, शक्ति या युद्ध का सिद्धान्त राजतन्त्र का संस्थापक हैं राजा तथा राजवंशों का उल्लेख राजतन्त्र के महत्त्व को स्पष्ट करता हैं। राजा के चयन का मुख्य उद्देश्य अपने कबीले का नेतृत्व करना था। समिति नामक आम सभा राजा का चयन करती थी। समिति को राजा के परिवर्तन का पूर्ण अधिकार था। पुरोहित आदि मन्त्रियों की सम्मति से ही राजा कोई निर्णय लेता था। अतः राजा निरकुंश या तानाशाह नहीं हो सकता था। साम्राज्य,[1] सम्राट्[2] आदि शब्दों का उल्लेख कितने ही मन्त्रों में आता है एवं राजाओं के मध्य युद्धों के वर्णन से साम्राज्य–विकास का स्पष्ट पता चलता है। युद्ध में विजयी होने पर राजा को विभिन्न उपाधियों से विभूषित किया जाता था। वैदिक साहित्य में राष्ट्र, एकराट्, सम्राट्, विराट् अधिराट् आदि अनेक उपाधियों का वर्णन मिलता है। ये उपधियाँ नृपतन्त्र या राजतन्त्र की विभूतियाँ हैं। सभा और समिति के द्वारा राजपद संचालित व नियन्त्रित होने के कारण एक प्रकार से जनतान्त्रिक वातावरण भी निर्मित हो गया था।

महाभारत, स्मृतिग्रन्थों, नीतिग्रन्थों आदि के साहित्यिक साक्ष्यों में राजतन्त्र व्यवस्था ही दृष्टिगोचर होती है। राजा को देवताओं का अंश मानकर न्यायपूर्वक प्रजा की रक्षा ही उसका कर्त्तव्य बताया है शासन–व्यवस्था का विकेन्द्रीकरण कर मन्त्रियों को विभिन्न विभाग सौंप दिये गये थे। मन्त्रियों के वेतनादि की व्यवस्था राजा द्वारा की गई थी। राजा अत्याचारी न हो तथा प्रजा का शोषण न करे, इसलिए राजा की निरंकुशता को रोकने के लिए एवं राजा को नियन्त्रित करने के लिए अनेक सदुपदेश एवं भय दिखाया है।[3] राजा ऋषियों, अमात्यों तथा चतुर, उपयुक्त एवं विश्वसनीय दूतों के परामर्श से शासन करते थे। नियमों तथा प्रशासन के प्रति सदैव सतर्क रहते थे। राजा का पद पैतृक तथा अनुवांशिक था, शासन की स्थिरता भी थी। राजा निरंकुश होता था, अतः अपेक्षाकृत न्यायदान भी निष्पक्षतापूर्वक करता था। राजतन्त्र के गुण जैसे शासन में एकरूपता, अनुशासन, आन्तरिकशान्ति, प्रजाहित की भावना आदि तत्कालीन व्यवस्था में थी। राजतन्त्र में उपयुक्त गुण तो थे ही, साथ में दोषों का भी अभाव नहीं था। प्रजा राजा के कोप से बचने के लिए तथा उसे प्रसन्न करने के लिए उसे अतिशय महिमामण्डित कर देवता का अवतार कहती थी।[4] इस तरह स्मृतिकालीन राजतन्त्र में पूर्णतः निरंकुशता व्याप्त थी तथा राजा के कुपित हो जाने पर प्रजा को अनेक प्रकार से क्षति का सामना करना पड़ता था। इसलिए प्राचीन आचार्यों ने राजा को राजधर्म का स्मरण कराते हुए त्रयी विद्या दण्डनीति, आन्वीक्षिकी तथा लोकव्यवहार की शिक्षा लेने की बात कही है।[5] राजतन्त्र में प्रजा को संविधान की अपेक्षा दण्ड का अधिक भय रहता है, दण्ड की कठोरता प्रजा को नियन्त्रित रखती है। विधि–नियम एवं राजदेश के पालनार्थ दण्ड का प्रयोग किया जाता था।[6] राजतन्त्र में दण्ड ही राजा के प्रशासन की शक्ति है। दण्ड की कठोरता का सामना प्रजा को अधिक करना पड़ता था।[7]

इस प्रकार स्पष्ट है कि ऋग्वेद एवं यजुर्वेद में राजतन्त्रीय शासन–प्रणाली विद्यमान थी। यजुर्वैदिक काल के उत्तरार्द्ध में यह सीमित राजतन्त्र होता हुआ गणतन्त्र की ओर अग्रसर हुआ। अथर्ववैदिक काल में प्रजातन्त्रीय शासन–प्रणाली की स्थापना हो गई थी। ब्राह्मण और स्मृतिकाल में राजतन्त्र या नृपतन्त्र की स्थापना होने लगी थी।

कुलीनतन्त्र

कुलीनतन्त्र को अंग्रेजी में एरिस्टोक्रेसी कहते हैं। जिसका अर्थ है सर्वश्रेष्ठ व्यक्तियों का शासन। साधारणतया कुलीनतन्त्र में थोड़े से श्रेष्ठ लोगों का शासन होता है। सत्ता अल्प लोगों के हाथों में रहती है जिसका आधार विद्या–बुद्धि न होकर कुलविशेष जन्म होती गई

है। इस प्रणाली में यह धारणा रहती है कि बुद्धिमान तथा योग्य व्यक्ति ही अपेक्षाकृत उत्तम रीति से शासन चलाते हैं। कुलीनवर्ग के शासक कभी भी अविवेक और असंयम से काम नहीं करते, वे सर्वदा सामाजिक कल्याण को ध्यान में रखते हैं। इस पद्धति में क्रान्ति की सम्भावना नहीं के बराबर होती है। प्रजातन्त्रीय व्यवस्था की स्थिति इस पद्धति में भी निहित रहती है। कुलीनतन्त्र में जब शक्ति सम्पन्न कुछ व्यक्तियों की उन्नति एवं प्रगति ही लक्ष्य हो जाता है, तब इससे राष्ट्र का विकास एवं उन्नति नहीं हो पाती। इससे प्रजा में धीरे–धीरे असन्तोष फैलने लगता है। प्रजा की आर्थिक स्थिति दयनीय हो जाती है और आर्थिक भार बढ़ जाता है। अन्त में क्रान्ति होती है और कुलीनतन्त्र से सभ्य समाजतन्त्र या प्रजातन्त्र की नींव पड़ जाती है।

वैदिककाल में 'मित्रावरुण', 'इन्द्राग्नि', द्यावापृथिवी' आदि अनेक युग्म देवताओं का वर्णन है। ये देवता लगभग एक ही प्रकृति के हैं। इनका स्वरूप कुलीनतन्त्र की तरह ही था। ये सभी युग्म देवता प्रायः राजा के रूप में ही वर्णित है तथा इनकी गणना राजा के रूप में नहीं हुई है, ये देवता राजा के अत्यन्त सहयोगी एवं समीपी हैं। सभा में इनका युग्म रूप में आह्वान भी किया जाता था।[8] स्मृतिग्रन्थों में भी सभासदों को विशिष्ट सम्मान तथा उच्च स्थान दिया जाता था।

अधिनायकतन्त्र

अधिनायकतन्त्र का आधार आदर्शवाद है। कैनन के अनुसार अधिनायकतन्त्र एक व्यक्ति की सरकार होती है जो अपने पद को उत्तराधिकार में प्राप्त कर अपनी शक्ति की स्थापना बल या शक्ति या दोनों के सहयोग द्वारा करता है। उसकी इच्छा से ही समस्त राजनैतिक शक्तियाँ उत्पन्न होती है। अपनी आज्ञा का पालन वह स्वेच्छाचारी उपायों से कराता है, कानून द्वारा नहीं। वह शक्ति या क्रान्ति पर विश्वास करता है, बलपूर्वक तथा संगठन की स्वार्थसिद्धि हेतु शासन का उपयोग करता है। इसका अध्यक्ष तानाशाह होता है, जो निरंकुश रूप से अधिकार प्राप्त करता है तथा उसका उपयोग भी अनुत्तरदायित्वपूर्ण रीति से करता हैं। इसमें एक ही व्यक्ति पर राजसत्ता केन्द्रित होती हैं प्रजातन्त्र के विपरीत प्रजा के अधिकारों पर इसमें बल नहीं दिया जाता हैं। यह प्रजातन्त्र का विरोधी है, क्योंकि यह साम्राज्यवाद, राष्ट्रप्रेम एवं एकदलीय व्यवस्था का प्रतिपादक है। हिटलर और मुसोलिनी ने अधिनायकतन्त्र का ही नारा दिया था।

वैदिककाल में अधिनायकतन्त्र प्रणाली भी दृष्टिगोचर होती है। शत्रुओं को नष्ट करने, जलाने, समूल नष्ट करने की अनेक घटनाएँ मिलती है। शत्रुओं एवं राष्ट्रद्रोहियों का विनाश अनैतिक कार्य नहीं है। इन्द्र साम्राज्यवादी देवता था उसने अपने साम्राज्य विस्तार की महत्त्वकांक्षा में अनेक हत्यायें की। उनके इन कार्यों का उल्लेख ऋग्वेद के 10वें मण्डल के 49वें सूक्त में किया गया है। वरशिख का वध,[9] सरयू नदी के तट पर अर्णा एवं चित्ररय नामक उस पार के सामन्तों को मारना,[10] क्रूरता की प्रतिमूर्ति इन्द्र ने वृद्ध कवष को जल में डुबोया,[11] दधीचि की हड्डियों से 99 वृत्रों को मारना,[12] कृष्ण के दस हजार सैनिकों को पराजित करना[13] आदि अनेक वध करने का उल्लेख है। इन्द्र दिव्यशक्तिसम्पन्न था, उसने सम्पूर्ण विश्व पर अपने साम्राज्य का विस्तार किया था।[14] प्रजापति ने उसे अजातशत्रु कहा है।[15] इन्द्र अपनी शक्ति से दैवी एवं मानुषी जनता का नेता बन गया था। यह तत्कालीन साम्राज्यवाद एवं शक्तिवाद के प्राबल्य को प्रस्तुत करता है। वेदों में प्रयुक्त 'ऋत' शब्द भी अधिनायकतन्त्र का द्योतक है। ऋत के उग्र होने का तात्पर्य समस्त प्राणियों में समष्टि है। ऋत का सत्य से परे हो जाना, उसके भयंकर परिणाम का कारण बनता है। ऋत का संकीर्ण होना अधिनायकतन्त्र को जन्म देता है। डॉ0 आशीर्वादम् के अनुसार अनुत्तरदायित्वपूर्ण अधिकेन्द्रित राज्य का अर्थ है व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का दमन करना और मानवीय व्यक्तित्व को दबाना, स्वदेश में हिंसा करना, विदेश पर निष्ठुरतापूर्वक आक्रमण करना, मानवीय स्वभाव की नृशंस हत्या करना और सम्पूर्णलोगों का सैनिकीकरण करना।'[16]

प्रजातन्त्र

आंग्लभाषा में प्रजातन्त्र को डेमोक्रेसी कहते हैं। यह प्रजा का तन्त्र अर्थात् शासन या सरकार है। इसे ही जनतन्त्र या लोकतन्त्र कहा जाता है। विश्व की विभिन्न शासन–पद्धतियों में प्रजातन्त्र सबसे अधिक लोकप्रिय है। सीले के अनुसार– जिस शासनप्रणाली में प्रत्येक सदस्य का भाग हो, उसे प्रजातन्त्र कहते हैं।[17] लार्ड ब्राइस ने प्रजातन्त्र को शासन का वह आकार माना है, जिसमें शासन की सम्पूर्ण शक्ति जनसमुदाय में निहित रहती है।[18] इस प्रकार इस शासन–प्रणाली में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जनता सरकार बनाती है, अपना सदस्य चुनती है एवं उनके द्वारा बनाये नियमों एवं व्यवस्था के नियन्त्रण में जीवन–यापन करती है। इसमें शक्ति शासनाध्यक्ष के हाथों में न रहकर उसका विकेन्द्रीकरण रहता है। प्रजा के विपरीत कार्य करने पर शासनाध्यक्ष को विद्रोह या पदच्युत होने का भय रहता है, इसमें स्वतन्त्र न्यायालय की व्यवस्था होती है। प्रजा अभियोग लगाकर सरकार को पदच्युत या परिवर्तन कर सकती है।

वैदिककाल में ही प्रजातन्त्रीय शासनप्रणाली चित्रित होती है। यजुर्वेद में 'स्वराट्'[19] और 'विराट्'[20] शब्दों का उल्लेख है, स्वराट् को उत्तर से तथा विराट् को दक्षिण से सम्बोधित किया गया है। ऐतरेयब्राह्मण में एक वर्णन मिलता है, कि हिमालय के पास उत्तर कुरु और उत्तरमद्र आदि जनों में विराट् (राजा रहित) शासनतन्त्र प्रचलित था, जिसके कारण वहाँ की जनता नृपहीन जन कही जाती थी।[21] सामाजिक समझौते के सिद्धान्त द्वारा राज्य की उत्पत्ति द्वारा भी यह सिद्ध होता है कि उस समय गणतान्त्रिक–व्यवस्था प्रचलित थी । प्रजा द्वारा राजा का चयन होता था, जनता न चाहे तो उसे स्वीकार न करे। इस तरह राजा का अस्तित्व जनता के अधीन था।

आधुनिक काल में प्रचलित प्रजातन्त्रीय व्यवस्था के दो रूप हैं– (क) प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र (ख) अप्रत्यक्ष प्रजातन्त्र।

(क) प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र

इसमें सम्पूर्ण जनता स्वयं शासन–संचालन करती हैं समस्त जनता स्वयं सभास्थल या परिषद् में उपस्थित होकर शासन के कार्यों में भाग लेती है। एक सभा के रूप में उपस्थित होकर विचार–विमर्श करती है तथा कानून बनाती है। यह व्यवस्था छोटे राज्यों के लिए ही सम्भव है, जहाँ जनता एक निश्चित स्थल पर उपस्थित हो सके। इस व्यवस्था को व्यवहारिक बनाने के लिए लोक निर्णय, उपक्रम, प्रत्यावर्तन तथा लोकमतसंग्रह आदि चार साधनों का प्रयोग किया गया।

(ख) अप्रत्यक्ष प्रजातन्त्र

वर्तमान समय में विश्व के विभिन्न देशों में जनसंख्या इतनी कम नहीं है कि नागरिकों को एक स्थान पर इकट्ठा कर लिया जाये। इसलिए जनता अपने द्वारा चुने गये प्रतिनिधियों द्वारा शासन में भाग लेती है, इसे अप्रत्यक्ष या प्रतिनिध्यात्मक प्रजातन्त्र कहते हैं, प्रतिनिधियों का चुनाव वयस्क नागरिकों द्वारा मताधिकार के प्रयोग से होता है। इसके चार रूप है। संसदीय या मन्त्रिमण्डलात्मक, अध्यक्षात्मक, संघात्मक तथा एकात्मक। आज विश्व के अधिकाधिक देशों में यही व्यवस्था व्यवहार में है।

प्राचीन भारतीय साहित्य में अनेक छोटे बड़े राज्यों का उल्लेख मिलता है। बड़े राज्यों का शासन केन्द्रित रूप में नहीं किया जा सकता है। अतः शासन की सुविधा के लिए उसे अनेक ईकाइयों में

बाँट दिया जाता है। इस प्रकार शासन शक्ति के केन्द्रित एवं विघटित होने से सरकार के एकात्मक और संघात्मक दो विभेद किये जा सकते हैं। जिस शासन व्यवस्था में प्रान्तीय शासन अपने अस्तित्व के लिए केन्द्र पर निर्भर करता है, उसे शासन का एकात्मक रूप कहा जाता है तथा जब राज्यों की ईकाइयाँ अपने अस्तित्व के लिए केन्द्र पर निर्भर नहीं रहती है तथा संघ और राज्यों के कार्य क्षेत्र अलग–अलग बँटे हुए रहते हैं, उसे संघात्मक शासन कहते हैं, वैदिक काल में इन दोनों व्यवस्थाओं का उल्लेख मिलता है। राजा सर्वोच्च पदाधिकारी या शासक था। क्षत्रिय राजा पुरोहित द्वारा विधिवत, अभिमन्त्रित होकर राज्याभिषेकानन्तर राष्ट्र का प्रशासन करता था। मन्त्रिपरिषद् तथा न्यायपरिषद् का वह प्रधान होता था। शासन करने के लिए पुरोहित या अमात्य की सलाह आवश्यक थी। वैदिक एवं स्मृतिकाल में सत्ता या अमात्य की सलाह आवश्यक थी। वैदिक एवं स्मृतिकाल में सत्ता राजा में ही सुरक्षित रह जाती थी। एकराट् विराट् आदि उपाधियाँ एकात्मकता को प्रस्तुत करती है। स्मृतिकाल में भी राजा के प्रशासनिक सुदृढ़ता के लिए छोटी–छोटी ईकाइयाँ थी, परन्तु सर्वोच्च सत्ता राजा के हाथ में ही रहती थी। राजा के आदेश का पालन ही सरकार के आदेश का पालन होता था।

संघात्मक सरकार में एक केन्द्रिय सरकार होती है तथा उसकी सहायता के लिए कुछ संघीभूत ईकाईयों की सरकारें होती हैं। सामान्य हित के विषय केन्द्रिय सरकार के पास तथा क्षेत्रीय महत्त्व के विषय संघीय ईकाई के पास रहते हैं। प्राचीनकाल में राजा सत्ता का प्रधान होता था तथा क्षेत्रीय व्यवस्था का भार ग्रामणी, गणपति, आदि के हाथों में न्यायसम्बन्धी कार्य प्राड्विवाक, प्रदेष्टा आदि के हाथों में था जो स्थानीय शासक से नियन्त्रित होते थे। यदि स्थानीय प्रशासन से समाधान न निकले तो उस पर राजा निर्णय देता था। इसके लिए सभा, समिति, विदथ आदि संस्थाएँ स्थापित की गई थी। पुरोहित सभाओं में राजा को सलाह देता था। इस तरह सत्ता का विकेन्द्रीकरण हो गया था। सबको एक–दूसरे के सहयोग की अपेक्षा रहती थी, तभी प्रशासन चलता था। यह व्यवस्था भी संघात्मक और अध्यक्षात्मक दो रूपों में प्राप्त होती है। वैदिककालीन संघात्मक सरकार में द्विसदनीय (सभा और समिति) व्यवस्था प्रचलित थी। ब्राह्मणकाल में सभा–समिति का स्थान 'पौर–जनपद' ने ले लिया था। रामायण में भी इसका उल्लेख मिलता है।[22] स्मृतियों में जनपदों के कानूनों के वर्णन से इसका अस्तित्व सिद्ध होता है। इनके विरुद्ध आचरण करने वाले व्यक्ति को सरकार द्वारा किसी भी प्रकार की सुविधा देने का निषेध था। मनु के समय या संविद् राज्य के विधि नियम या कानून नहीं थे, ग्राम और देश के अधिकारियों की स्वेच्छा से किये गये समझौते मात्र थे।[23] कौटिल्य अर्थशास्त्र,[24] याज्ञवल्क्यस्मृति[25] तथा शुक्रनीति[26] में भी इसका उल्लेख किया गया है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि राजतन्त्र, कुलीनतन्त्र, अधिनायकतन्त्र तथा प्रजातन्त्र ये चारों शासन–पद्धतियाँ प्राचीन भारत में विद्यमान थी, जो विभिन्न उदाहरणों से सिद्ध है। कोई भी व्यवस्था परिस्थितियों की दास होती है। आज विश्व के विभिन्न देशों में प्राचीन भारत द्वारा प्रदत्त लगभग इन शासन–पद्धतियों का ही विधान है।

संदर्भ सूची

1. ऋग्वेद– 1.25.10.
2. वही– 8.16.1.
3. मनुस्मृति– 4.85.
4. वही– 7.8.
5. कौटिल्य अर्थशास्त्र 1.5.
6. याज्ञवल्क्यस्मृति– 1.346.
7. मनुस्मृति– 7.18.
8. ऋग्वेद– 8.77.10.
9. वही– 6.27.5.
10. वही– 4.30.2.
11. वही– 7.18.12.
12. वही– 1.84.13.
13. वही– 7.74.13–15.
14. वही– 5.34.6.
15. वही– 5.34.1.
16. प्राचीन भारत की राज्यव्यवस्था– पृ. 169. से उद्धृत।
17. क्मउवबतंबल पे ळवअज पद ूपबी मअमलवदम ीं ैंतम . ैममसलण च्ण 324ण
18. डवकमतद क्मउवबतंबलण च्24ए टवसण्ण् ठल स्ण्ठतलबम
19. यजुर्वेद– 15.13.
20. वही– 15.11.
21. ऐतरेयब्राह्मण– 7.3.14.
22. रामायण–2.14.54.
23. मनुस्मृति–8.18.19.
24. कौटिल्य अर्थशास्त्र–3.7.
25. मिताक्षरा–याज्ञवल्क्यस्मृति–2.6.
26. शुक्रनीतिः–1.347.